LEARN GEETA
तस्मात् योगी भवार्जुन

|| श्रीहरिः ||
वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम् |
देवकीपरमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ||

गीता परिवार
|| गीता पढ़ें, पढ़ायें, जीवन में लायें ||

|| श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ||

अध्याय 13: छेत्रछेत्रज्ञविभागयोग

1/2 (श्लोक 1-7), शनिवार, 18 मार्च 2023

विवेचक: गीता विशारद डॉ आशू जी गोयल

यूट्यूब लिंक: https://youtu.be/8cdtJzi1U-Q

आत्म साक्षात्कार का महत्त्व तथा परम सत्य की खोज द्वारा ज्ञान प्राप्त करना

पारंपरिक दीप प्रज्वलन प्रार्थना और गुरु वंदना के साथ आज के विवेचन का आरंभ हुआ। बहुत ही प्रसन्नता की बात है कि हमें भगवान की ऐसी कृपा प्राप्त हुई है, ऐसा अद्भुत अवसर जीवन में उपस्थित हुआ है, जो अपने जीवन को सफल करने के लिए, सार्थक करने के लिए हम लोग गीता जी में प्रवृत्त हो गए हैं। पता नहीं हमारे इस जन्म के कोई पुण्य हैं, पूर्व जन्मों के हमारे कोई सुकृत हैं या हमारे पूर्वजों के कोई सुकृत हैं, या फिर इसी जन्म में किसी सन्त महापुरुष की कृपा दृष्टि हम पर पड़ गई है, जिस कारण हमारा ऐसा भाग्य उदय हुआ है कि हम लोग गीता जी पढ़ने में लग गए हैं। गीता जैसा कल्याणकारी ग्रन्थ कोई भी दूसरा नहीं है, ऐसा सन्तों और महापुरुषों ने बारम्बार कहा है। आचार्यों ने, सन्तों ने, ऋषियों ने, सभी ने गीता जी की अपरम्पार महिमा का वर्णन किया है। देश में ही नहीं विदेशों में भी जिसने गीता जी को देखा है, उसके प्रभाव से चकित हुए बिना न रह सका।

ग्यारहवें अध्याय का अद्भुत चिंतन हमने देखा जिसमें हमें साक्षात विश्वरूप दर्शन का भी सौभाग्य मिला। जिन को अनुभव हुआ उन्हें इसके महत्त्व का पता चल गया।

पूरी गीताजी में तेरहवाँ अध्याय सबसे कठिन माना जाता है। उसे हमें तीस बार में भी समझना मुश्किल है। इसे समझना टेढ़ी खीर है। पूरी गीता में जिस अध्याय को बुद्धि से समझना एकदम कठिन से भी कठिन है वह तेरहवाँ अध्याय ही है। भगवान ने इस अध्याय में एकदम गूढ़ ज्ञान बताया है।

गीता मनीषियों ने गीता जी के अट्ठारह अध्यायों को छः-छः के तीन भागों में बाँटा। पहला भाग पहले अध्याय से छठे अध्याय तक है, यह **कर्म प्रधान** कहलाता है। सनातनियों ने दूसरे भाग सातवें अध्याय से बारहवें अध्याय को **वासना प्रधान** कहा है और तीसरे भाग तेरह से अट्ठारह अध्याय को **ज्ञान प्रधान** कहा है।

आज तीसरे भाग का आरंभ करेंगे। सनातनियों ने तो इसे उपासना प्रधान, ज्ञान प्रधान दृष्टि से बाँटा, लेकिन वेदान्तियों ने इसे अलग दृष्टि से देखा।

वेदांत का एक सूत्र है

'तत्त्वमसि'

"त्वम " यानी देहधारी अनित्य है। पहले छः अध्याय में इसका चिंतन है। त्वम यानि जीवधारी।

दूसरे छः अध्याय में "तत्" का चिंतन है। परमात्मा क्या है?

सातवें अध्याय से बारहवें अध्याय तक तीसरे भाग में "असि "का चिंतन है। जीव और ईश्वर की अभेदता। "असि" यानि 'है'।

वेदान्त का एक बड़ा गूढ़ सूत्र है। जब हम कहते हैं सत्य है, असत्य नहीं है। जब असत्य है ही नहीं तो कहने की क्या आवश्यकता है कि असत्य नहीं है। यदि है ही नहीं तो इस शब्द की रचना की आवश्यकता ही क्या है। फिर कहते हैं कि यह सत् है। सत्य की सत्ता है असत् की सत्ता नहीं है। ऐसा कहने से असत् की सत्ता अपने आप मालूम हो जाती है। तो यह बात गलत है। उसका समाधान ऐसा मिलता है।

परम श्रद्धेय ब्रह्मलीन गुरु महाराज जी की एक पुस्तक है। **"साधन और साध्य**", उसमें इसकी बहुत सुंदर विवेचना की है। स्वामी जी कहते हैं असत् की सत्ता नहीं है। इस में जो है वही सत् है। जो है, आप बोल रहे हैं वह है, इसी कारण यह भासता है। परंतु नहीं है, बोलने पर जो है, यही सत् के कारण है। वास्तव में सत् है असत् नहीं है यदि नहीं काट दिया जाए तो केवल है बचता है। स्वामी जी महाराज ने अपने अंतिम प्रवचनों में कई कई बार कहा, **"है"**, इसी पर बोलते रहते थे, इसी को कहते रहते थे। यह **है** की सत्ता ही महत्त्वपूर्ण है।

वेदान्तियों ने कहा हैं कि यह तेरहवें अध्याय से अट्ठारहवें अध्याय तक का जो तीसरा भाग है, यह **असि** है। ईश्वर और जीव की अभेदता, यानी दूसरा कुछ है ही नहीं।

एको ब्रह्म द्वितीयो नास्ति।।

तेरहवाँ अध्याय सातवें अध्याय का परिशिष्ट है। सातवें अध्याय में भगवान ने ज्ञान - विज्ञान का आरंभ किया और बीच में अर्जुन ने आठवें अध्याय में भगवान से सात प्रश्न पूछ लिए। आदि भूत क्या है? आदि यज्ञ क्या है? भगवान ने उनका उत्तर दिया। परंतु भगवान को लगा कि अर्जुन को समझ ही नहीं आ रहा है कि मैं कितनी बड़ी बात बतला रहा हूँ। फिर भगवान ने नौवें अध्याय में कहा कि अर्जुन ! तुम समझो, कि मैं तुम्हें क्या बताना चाह रहा हूँ। यही राज विद्या है, राजयोग है, राज गुह्य है। इसीलिए उस अध्याय को राजविद्या राजगुह्ययोग योग कहा है।

नौवें अध्याय में भगवान ने जब पूरा बतलाया कि कैसे एक अंश से संपूर्ण जगत विद्यमान है, तो अर्जुन ने फिर कहा कि कैसे आपका अंश, कहाँ -कहाँ विशिष्ट रूप में दिखता है।

दसवें अध्याय में भगवान ने अपने विभूतियाँ बतला दी। दसवें अध्याय में जब अर्जुन ने विभूतियाँ सुनी तो उसके मन में आया, कि यह जो आप बता रहे हो, उस ऑडियो का कोई वीडियो भी है क्या ? मैं उसे देखना चाहता हूँ। मैंने जो सुना है उसे सुनने में तृप्ति नहीं हो रही है, मुझे तो वह देखना है।

भगवान अर्जुन को बहुत पसंद करते हैं, तो जो अर्जुन बोलते हैं, वही भगवान उसके लिए कर देते हैं। अर्जुन ने कहा सुना दो, तो भगवान ने सुना दिया। फिर अर्जुन ने कहा दिखा दो, तो भगवान ने उसे दिखा दिया। उसे विश्वरूप का दर्शन कराया और यह भी कहा कि तुम्हारे अलावा अभी तक मैंने किसी को इस रूप का दर्शन न तो कराया है और न ही करवाऊँगा। न यज्ञ से, न तप से, न दान से, किसी भी तरह से इस रूप को न देवताओं को, न ऋषियों को, न महर्षियों को, तुम्हारे सिवा किसी को भी नहीं दिखाया है।

अर्जुन ने कहा - बस, अब मुझे चतुर्भुज रूप दिखा दो, तो भगवान ने उसे ग्यारहवें अध्याय में चतुर्भुज रूप भी दिखा दिया। बारहवें अध्याय में भगवान ने अर्जुन से पूछा - कितना अच्छा आपका यह रूप है। आप इतनी ज्ञान की बातें क्यों करते हो? तो बारहवें अध्याय में भगवान ने भक्तियोग कह दिया और उनके लक्षण भी बता दिए और साधन का महात्म्य अर्जुन को दे दिया।

बारहवें अध्याय के भक्तियोग के बाद जब तेरहवाँ अध्याय आया तो भगवान ज्ञानयोग का आरंभ कर देते हैं।

पूर्व काल के गीता मनीषियों ने ऐसा विचार किया कि ऐसा नहीं हुआ होगा। वेद व्यास जी से एक श्लोक छूट गया होगा। अर्जुन ने कोई प्रश्न किया होगा तभी तो यहाँ पर क्षेत्र, क्षेत्रज्ञ आया होगा। भगवान ने अचानक ही एक नया शब्द लाकर खड़ा कर दिया बिना किसी सन्दर्भ के। यह कुछ ठीक नहीं लग रहा है तो उन्होंने एक श्लोक लगा दिया :

प्रकृतिं पुरुषं चैव क्षेत्रं क्षेत्रज्ञमेव च ।
एतद्वेदितुमिच्छामि ज्ञानं ज्ञेयं च केशव ॥

इस्कॉन की गीता में यह श्लोक अर्जुन उवाच के रूप में मिलेगा। आदि शंकराचार्य भगवान ने इस श्लोक को नहीं माना है तो उन्होंने इस श्लोक को नहीं लिया है। गीता परिवार में भी इस श्लोक को नहीं लेते हैं। हमारी गीता सात सौ श्लोकों की है और तेरहवाँ अध्याय चौंतीस श्लोकों का है, लेकिन कुछ प्रकाशनों में तेरहवाँ अध्याय पैंतीस श्लोकों का होता है। गीता प्रेस में भी इसे नहीं मानते हैं।

भगवान ने यहाँ दो नए शब्द रच दिए। **क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ**। यह श्लोक एकदम नहीं आया है। बहुत सी जगह पर भगवान ने प्रकृति की बात कही है। कितनी जगह पुरुष परमात्मा की बात कही है। कितनी जगह जीव परमात्मा की बात कही है। यह उसी के पर्यायवाची हैं। प्रकृति पुरुष कह दो या क्षेत्र क्षेत्रज्ञ कह दो, एक ही बात है, लेकिन इस अध्याय को समझने के लिए दो और शब्दों को समझना होगा। एक शब्द है व्यष्टि और एक शब्द है समष्टि।

व्यष्टि यानी अकेला, समष्टि यानि व्यापक।
व्यष्टि का विस्तार रूप समष्टि है।

जैसे गिलास में जल है, यह व्यष्टि है और संसार में जल है यह समष्टि है। जल तो वही है लेकिन जब गिलास में सीमित हो गया तो व्यष्टि कहलाता है। जब जल का चिंतन समग्र रूप से करते हैं तो वह समष्टि हो जाता है। एक ही वस्तु अलग-अलग प्रयोग पर, एक ही बात अलग-अलग जगह पर, व्यष्टि से समष्टि बन जाती है और समष्टि से व्यष्टि बन जाती है। इसको भी समझना पड़ेगा।

किसान के पास दो बीघा खेत है। अब जो किसान है वह क्षेत्रज्ञ है और जो खेत है वह क्षेत्र है। संयोग से यदि वर्षा नहीं हुई या अकाल पड़ गया और खेती नष्ट हो गई। यह किसान क्षेत्रज्ञ था और खेत क्षेत्र था। सरकार ने कहा इस साल किसानों का बहुतायत नुकसान हुआ है। हमारे राज्य के किसानों को हम एक -एक लाख की क्षतिपूर्ति राशि अर्थात मुआवजा देते हैं। एक लाख करोड़ की रकम उसके लिए निर्धारित कर दी। एक करोड़ किसानों को एक-एक लाख मिलेगा। अब वह नुकसान तो खेत का था, कि खेत में फसल नहीं हुई। लेकिन क्षतिपूर्ति राशि खेत को नहीं बल्कि किसान को मिलती है। अब यहाँ पर मुआवजा देने वाली सरकार तो हो गई क्षेत्रज्ञ और किसान और खेत दोनों हो गए क्षेत्र। अभी तक किसान अपने खेत के लिए क्षेत्रज्ञ था, लेकिन किसान के क्षतिपूर्ति राशि की बात जब आती है तो खेत और किसान दोनों क्षेत्र बन जाते हैं और क्षेत्रज्ञ सरकार हो जाती है। खेती और किसान व्यष्टि हैं परन्तु जब सरकार ने क्षतिपूर्ति दी तो यह समष्टि की बात हो जाती है।

13.1

इदं(म्) शरीरं(ङ्) कौन्तेय, क्षेत्रमित्यभिधीयते।
एतद्यो वेत्ति तं(म्) प्राहुः, क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः॥13.1॥

श्रीभगवान् बोले - हे कुन्तीपुत्र अर्जुन ! 'यह' - रूप से कहे जाने वाले शरीर को 'क्षेत्र' - इस नाम से कहते हैं (और) इस क्षेत्र को जो जानता है, उसको ज्ञानी लोग 'क्षेत्रज्ञ' इस नाम से कहते हैं।

विवेचन :- हे अर्जुन! इस श्लोक का पहला शब्द है "इदं(म्)"। इस शब्द पर विद्वानों ने अनेक व्याख्याएँ की है। हमें लगता है कि इस एक शब्द "इदं(म्)" की क्या व्याख्या हो सकती है? इदं यानि is, it, यह, लेकिन इसमें क्या बड़ी बात है? परंतु दर्शनशास्त्र में

यही एक शब्द ब्रह्मांड का द्योतक बन जाता है। यह किसको कहा जाए उसके अनुसार।

साधारण रूप से देखा जाए तो मैं इस कमरे में बैठा हूँ, तो हम कहते हैं कि यह गिलास, यह किताब, यह दरवाजा और अगर वह बगल वाले कमरे में रखा है, तो कह देंगे, वह मेज, वह कुर्सी, वह दरवाजा। यानी कि जो अपने नजदीक हैं, उसे बोलते हैं "यह" और अपने से जो दूर है उसको "वह" कहते हैं और यदि मेरे ही कमरे में दो मेज हो तो पास वाली मेज को कहेंगे "यह" वाली मेज और जो दूर वाली मेज होगी, उसे कहेंगे "वह" वाली मेज। यानी जो हमारी पहुँच में हो, पास में हो, वह हो गया व्यष्टि। जो हमारी पहुँच से थोड़ा सा दूर है वह हो गया समष्टि।

एक श्लोक है :-

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

यह पूर्ण है। पूर्णमिदं, यह भी पूर्ण है। यानी जिसको हम मन- इंद्रियों से जान नहीं सकते, देख नहीं सकते, वह भी पूर्ण है। जिसे हम, मन- इंद्रियों से सोच सकते हैं, जान सकते हैं, परमात्मा के जिस रूप की, हम अपने मन में कल्पना कर सकते हैं वह भी पूर्ण है। पूर्णस्य अवस्था है, वह भी पूर्ण है। पूर्ण से जो निकाला वह भी पूर्ण है। अब हमारी दृष्टि में तो जो पूर्ण से निकाला वह पूर्ण हो गया। परन्तु ऐसा कैसे हो सकता है कि पूर्ण से निकाला और पूर्ण ही हो गया। इसके लिए वेदान्त को समझना पड़ता है।

हमने सुना था **मठाकाश, महाकाश, घटाकाश**। हमारे कमरे में जो आकाश है इसका तापमान और जो हमारे घर के बाहर जो आकाश है उसका तापमान अलग-अलग है। यह आकाश उसी आकाश से निकल कर आया है, अलग नहीं है। तो यह आकाश क्या कम हो गया है? नहीं! वह कम तो नहीं हुआ, यह तो उसी आकाश के भीतर है।

इसी प्रकार पानी के गिलास के भीतर का आकाश भी बाहर के आकाश का ही हिस्सा है लेकिन इस गिलास का आकाश अलग है। इसको हम यदि ढक कर रख देंगे तो इसका तापमान अलग हो जाएगा। जो आकाश हमने बाहर से लाकर इस गिलास के अंदर रखा उसे हमनें घटाकाश कहा । इसके कारण बाहर के आकाश में कोई कमी नहीं आई, वह भी पूर्ण रह गया और यह भी पूर्ण है क्योंकि यह उसके बाहर नहीं गया। इसी प्रकार जब परब्रह्म परमात्मा से इस समस्त सृष्टि, चराचर की, जगत की रचना होती है तो वह उसी में से निकल कर उसी में व्याप्त रहती है। वह पूर्ण से ही निकलती है और पूर्ण में ही विद्यमान रहती है। जिस से निकलती है, वह भी पूर्ण ही कहलाता है और जो निकलता है, वह भी पूर्ण ही होता है।

मन, इंद्रियों से परे है वह भी पूर्ण है। पूर्ण से निकला वह भी पूर्ण है। पहले श्लोक का जो '**इदं**' है वह व्यष्टि है। जो दूसरे श्लोक में आएगा, वह समष्टि है। भगवान कहते हैं - हे अर्जुन ! **इस शरीर को क्षेत्र के नाम से जाना जाता हैं और जो जानता है उसे क्षेत्रज के नाम से जानते हैं।** हमारा शरीर पहले पाँच वर्ष का था, फिर पन्द्रह का हुआ, फिर पच्चीस का हुआ। यह हमेशा बदलता रहा। लेकिन जो इसको जानने वाला है वह नहीं बदलता है, वह हमेशा एक ही रहता है। जब हम छोटे थे तो हमारा आत्मबोध और शरीर अलग था। हम बड़े हो गए हैं तो शरीर तो बदल गया, परंतु यह नहीं बदला।

यदि हमारे बचपन की फोटो जो हमने न देखी हो और हमें अब लाकर दिखाएँ, तो हम एकदम नहीं पहचान सकते क्योंकि शरीर एक जैसा नहीं रहता। वह बदलता रहता है। वह तो हमें सब बता रहे हैं कि "यह तुम हो" तो हमारी स्मृति में बैठ गया। अगर हमारी स्मृति में नहीं है और कोई हमें बताएगा तो हमें लगेगा, पता नहीं कौन हैं ? हम पहचान ही नहीं सकते। जो जानने वाला है वह क्षेत्रज्ञ है। वह कभी बदलता नहीं, कभी घटता नहीं और जो हमेशा हर क्षण बदल रहा है वह क्षेत्र है।

जब तक इस हृदय की धड़कन चलती रहती है तब तक कहते हैं कि यह व्यक्ति जीवित है। जब दिल की गति बंद हो जाती है, फिर वह मृत हो जाता है तो वह किसी काम का नहीं रहता। अभी तो हम अपने शरीर पर कितना भी खर्च कर देते हैं, परंतु जब शरीर को जलाना ही होता है तो उस पर खर्च भी क्यों करे। शरीर तो वही है, उसमें कोई फर्क नहीं है, परंतु उसमें से जो आत्मतत्त्व है वह निकल गया, तो कहते हैं कि किसी काम का नहीं है। यह क्षेत्र है किसी भी काम का नहीं है और जो उसको जानता है वह क्षेत्रज्ञ है।

फिर भगवान ने उसका विस्तार किया।

13.2

क्षेत्रज्ञं(ञ्) चापि मां(म्) विद्धि, सर्वक्षेत्रेषु भारत।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं(म्), यत्तज्ज्ञानं(म्) मतं(म्) मम॥13.2॥

हे भरतवंशोद्भव अर्जुन ! (तू) सम्पूर्ण क्षेत्रों में क्षेत्रज्ञ मुझे ही समझ और क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ का जो ज्ञान है, वही मेरे मत में ज्ञान है।

विवेचन :- भगवान कहते हैं, हे अर्जुन! सब क्षेत्रों में जीवात्मा तुम मुझे ही जानों। आजकल जो अपने से ज्यादा जानता है उसे हम आचार्य कह देते हैं, परंतु दर्शनशास्त्र में आचार्य कहलाने के लिए एक नियम है। उसने **उपनिषदों** का पठन किया होना चाहिए, दूसरे उसने **ब्रह्म सूत्र** का अध्ययन किया होना चाहिए और तीसरा उसने **भगवद्गीता** का अध्ययन किया होना चाहिए। इन तीनों का अध्ययन करने के साथ ही जो इन तीनों का टीका कर सकता है, इनके ऊपर भाष्य लिख सकता है, वही आचार्य होता है और जिसने इन तीनों पर अपना भाष्य नहीं लिखा, वह आचार्य नहीं कहलाता। जब इन तीनों पर भाष्य लिखने की क्षमता आ जाए, तभी वह आचार्य बन सकता है।

भगवान कहते हैं, इन सब क्षेत्रों में जो क्षेत्र जीवात्मा है वह मुझे जान। सामान्य बातों में विकार मतलब कोई गड़बड़ बात है, परंतु जब हम वेदांत पढ़ रहे हैं तो विकार नकारात्मक में नहीं आता। विकार का अर्थ है, जिसने भी अपने आकार का परिवर्तन कर लिया। एक आकार से दूसरे आकार में परिवर्तन हो गया, उसको विकार कहते हैं, जैसे दही। यह दूध का विकार है। दूध से तो बना है परंतु अब दूध नहीं है और दूध दही की प्रकृति है। विकार का एक अर्थ है विकृति। दही दूध का विकार या विकृति है और दूध दही की प्रकृति है। दही से मक्खन निकलता है तो मक्खन दही की विकृति है और मक्खन की प्रकृति दही है। ऐसे ही विकृति से प्रकृति और प्रकृति से विकृति। इसी से संपूर्ण ब्रह्मांड की रचना होती है। हर एक वस्तु का जो विकृति रूप है, वह दूसरी वस्तु का प्रकृति रूप होता है। फिर उसकी विकृति से दूसरी प्रकृति बनती है।

मूल प्रकृति किसे कहते हैं? वह प्रकृति जो किसी की भी विकृति नहीं है, जो अव्यक्त से व्यक्त हो गई। उत्पन्न होना और नष्ट होना, उसके जो बीच की परिस्थिति है वह अव्यक्त है और यह जो अव्यक्त है, वह जब व्यक्त होता है इसी को भगवान का ज्ञान कहते हैं।

ब्रह्मांड की रचना कैसे हुई इस बात को समझते हैं। **ब्रह्म अव्यक्त है।** जिसके बारे में कुछ भी नहीं बताया जा सकता, वह अव्यक्त है। अव्यक्त को व्यक्त करना बिल्कुल भी संभव नहीं है। अव्यक्त से रचना होती है समष्टि की, जैसे अहंकार। जब हम गीता पढ़ते हैं, वेद पढ़ते हैं, तो अहंकार का मतलब ईगो नहीं होता है। यहाँ पर समष्टि अहंकार की बात हो रही है। समष्टि से अहम का निर्माण हुआ। इस समष्टि अहम से, समष्टि बुद्धि का निर्माण हुआ। समष्टि बुद्धि से पंचमहाभूतों का निर्माण हुआ। पंचमहाभूतों से दस इंद्रियों का निर्माण हुआ। एक मन का निर्माण हुआ और पाँच तन मात्राएँ, इनका निर्माण हुआ।

यह चौबीस तत्त्व हैं। संपूर्ण प्रकृति इन चौबीस तत्त्वों को मिलाकर बनती है। जब आप प्रकृति बोलते हैं तो उसका अर्थ यह चौबीस तत्त्व हैं। इनमें-

पहला :- अव्यक्त।
दूसरा :- समष्टि अहंकार।
तीसरा :- समष्टि बुद्धि।
चौथा :- पंचमहाभूत।
दस इंद्रियाँ :-पंच कर्मेंद्रियाँ, पंच ज्ञानेंद्रियाँ।
एक मन।
पाँच तन मात्राएँ :- शब्द, रूप, स्पर्श, गंध और रस।

चौबीस तत्त्वों से सारी प्रकृति का निर्माण हुआ है और पूरे ब्रह्माँड में मनुष्य के पास ही यह चौबीस तत्त्व हैं। देवताओं और पँचमहाभूतों के पास भी ये नहीं है। देवताओं की परछाई भी नहीं होती है क्योंकि देवता प्रकाश तत्त्व ,अग्नि तत्त्व से बने हैं। वह चाहे तो हमारे जैसा रूप धारण कर सकते हैं कुछ समय के लिए।

पेड़ों की भी भगवान ने बहुत सारी बातें दी हैं, जैसे वह बढ़ता है, सांस लेता है, फल देता है, मरता है, लेकिन चलता फिरता नहीं है। उसकी चेतनता बहुत कम है। जानवरों के पास बहुत सारी चेतनता है, परंतु वह ध्यान नही कर सकते। कोई भी पशु अपने मन को स्थिर करने का अभ्यास नही कर सकता। चौरासी लाख योनियों में केवल मनुष्य ही है, जो इन चौबीस तत्त्वों से व्याप्त है। इनको नियन्त्रित करने की क्षमता भगवान ने बस हमें दी है। इसलिए मनुष्य योनि को सर्वश्रेष्ठ योनि कहा गया है।

बड़े भाग मानुष तन पावा | सुर दुर्लभ सब ग्रन्थन्हि गावा ||

यह सब देवताओं के लिए भी बहुत दुर्लभ है। संस्कृत में भी जितने शब्द हैं, पर्यायवाची होने पर भी, किस शब्द का प्रयोग कहाँ करना है, उसका अंतर होता है। विकृति को विकार कब कहते हैं? हमसे क्रोध उत्पन्न हुआ, यह हमारा विकार हो गया। हमसे लोभ उत्पन्न हुआ, यह हमारा विकार है। हमसे मोह उत्पन्न हुआ, यह भी हमारा विकार है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार। यह सब हम से उत्पन्न होने पर, हमारे विकार कहलाते हैं। यह पाँचों विकार मनुष्य के विकार हैं। मनुष्य सुख - दुख इससे जोड़कर सारी चेतनता करता है। जिससे इच्छाएँ पूरी होती है, उस से मोह हो जाता है। जिससे इच्छा पूरी नहीं होती है, उससे द्वेष हो जाता है। जब तक इस हृदय में धड़कन है, मनुष्य को जीवित कहते हैं।

जैसे एक छोटा बालक जब लाइट चालू करता है तो कहता है कि यह कैसे होता है। पिता जी कहते हैं कि इसमें पावर चालू कर दी, इसलिए इसमें बिजली आ गई। बच्चा कहता है मुझे बिजली देखनी है। पिता कहता है कि तुम वह नहीं देख सकते, तुम बल्ब को देख सकते हो। तो बच्चा कहता है कि बिजली बल्ब में है तो हम क्यों नहीं देख सकते। पिता कहते हैं, बस नहीं देख सकते।

ऐसे ही हम हैं। हमें भी लगता है कि हमें भगवान क्यों नहीं दिख रहे हैं। हमें यह चेतनता क्यों समझ नहीं आती है। हमें आत्मस्वरूप का बोध क्यों नहीं होता है। जैसे इस बालक को बिजली समझ नहीं आ रही है वैसे ही हमें मूल चेतनता नहीं समझ आती है। इन्हें समझने के लिए योग्यता होना बहुत जरूरी है। यदि हमें पात्रता नहीं है तो भगवान हमारा कितना भी हाथ पकड़ ले, तो भी हम समझ नहीं सकते हैं। इसके लिए पात्रता का होना बहुत जरूरी है। हमें लगता है हमारे में बुद्धि है तो हम समझ जाएंगे। बुद्धि तो बच्चे में भी है, पर वह नहीं समझ सकता। उसके लिए पात्रता होना बहुत जरूरी है।

रामकृष्ण जी ने विवेकानंद जी के सिर पर हाथ रखा तो वह समाधि में चले गए क्योंकि रामकृष्ण भी उसी पात्रता के थे और विवेकानंद जी भी उसी पात्रता के थे। रामकृष्ण जी ने कितने लोगों को छुआ होगा परंतु सबको समाधि तो नहीं हुई होगी। उन्होंने जीवन में पता नहीं कितने लोगों को स्पर्श किया होगा पर सबकी तो समाधि नहीं लगी। पात्रता नहीं है तो स्वयं भगवान भी सामने खड़े होकर समझा दें परंतु मनुष्य नहीं समझ सकता। उसके लिए पात्रता का होना बहुत जरूरी है।

आदि शंकराचार्य भगवान ने कहा कि ज्ञान का अधिकारी कौन है ?

विवेक चूड़ामणि में इनके चार लक्षण हैं। विवेक चूड़ामणि में आदि शंकराचार्य जी कहते हैं- चार सूत्र हैं। जिसमें विवेक है, वही ज्ञान का अधिकारी है। जिसमें यह नहीं है, वह ज्ञान का अधिकारी नहीं है।

पहला विवेक, दूसरा वैराग्य, तीसरा षटसंपत्ती और चौथा मुमुक्ष। **विवेक :-** जिसके विवेक की जागृति हो गई। जो अपना हित और अनहित, श्रेय और प्रेय उसको अलग-अलग करके जान सकता है। उसका आदर करना जानता है । श्रेय और प्रेय में हमेशा, श्रेय को चुनना, वह विवेक है।

वैराग्य :- गुरु बिन होइ कि ज्ञान, ज्ञान कि होइ बिराग बिनु।

षट् सम्पत्ति:- शम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा और समाधान।

मुमुक्ष :- जिसे मोक्ष की इच्छा है।

यह चार बातें जिसमें नहीं हैं वह ज्ञान का अधिकारी नहीं है। भगवान ने यहाँ पर पाँच श्लोकों में बीस लक्षण बताएँ हैं। भगवान कहते हैं कि अगर तुम्हें ज्ञान प्राप्त करना है तो तुम में यह बीस लक्षण होने बहुत जरूरी है।

13.3

तत्क्षेत्रं(म्) यच्च यादृक्च, यद्विकारि यतश्च यत्।
स च यो यत्प्रभावश्च, तत्समासेन मे शृणु॥13.3॥

वह क्षेत्र जो है और जैसा है तथा जिन विकारों वाला है और जिससे जो (पैदा हुआ है) तथा वह क्षेत्रज्ञ (भी) जो है और जिस प्रभाव वाला है, वह सब संक्षेप में मुझ से सुन।

विवेचन :- वह क्षेत्र जो है और जैसा है तथा जिन विकारों वाला है और जिस कारण से जो हुआ है। वह क्षेत्रज्ञ भी है और जो जिस प्रभाव वाला है। वह सब संक्षेप में मुझ से सुन।

13.4

ऋषिभिर्बहुधा गीतं(ञ्), छन्दोभिर्विविधैः(फ्) पृथक्।
ब्रह्मसूत्रपदैश्चैव, हेतुमद्भिर्विनिश्चितैः॥13.4॥

यह क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ का तत्त्व- ऋषियों के द्वारा बहुत विस्तार से कहा गया है (तथा) वेदों की ऋचाओं द्वारा बहुत प्रकार से विभागपूर्वक (कहा गया है) और युक्ति युक्त (एवं) निश्चित किये हुए ब्रह्मसूत्र के पदों द्वारा भी (कहा गया है)।

विवेचन :-यह क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ का तत्त्व ऋषियों द्वारा बहुत प्रकार से कहा गया है और विविध वेद मंत्रों द्वारा भी विभाग पूर्वक कहा गया है, तथा भलीभांति निश्चय किए हुए युक्तियुक्त ब्रह्मा सूत्र के पदों द्वारा भी कहा गया है। भगवान ने ब्रह्मसूत्र की बात कही है।

13.5

महाभूतान्यहङ्कारो, बुद्धिरव्यक्तमेव च।
इन्द्रियाणि दशैकं(ञ्) च, पञ्च चेन्द्रियगोचराः॥13.5॥

मूल प्रकृति और समष्टि बुद्धि (महत्तत्त्व), समष्टि अहंकार, पाँच महाभूत और दस इन्द्रियाँ, एक मन तथा पाँचों इन्द्रियों के पाँच विषय - (यह चौबीस तत्त्वों वाला क्षेत्र है)।

विवेचन :- भगवान कहते हैं, हे अर्जुन! पंचमहाभूत, अहंकार, बुद्धि और मूल प्रकृति भी तथा दस इंद्रियाँ, एक मन और पाँच इंद्रियों के विषय अर्थात शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध।

13.6

इच्छा द्वेषः(स्) सुखं(न्) दुःखं(म्), सङ्घातश्चेतना धृतिः।
एतत्क्षेत्रं(म्) समासेन, सविकारमुदाहृतम्॥13.6॥

इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख, संघात (शरीर), चेतना (प्राणशक्ति) (और) धृति - इन विकारों सहित यह क्षेत्र संक्षेप से कहा गया है।

विवेचन :- इच्छा, द्वेष, सुख-दुख, स्थूल देह का पिंड, चेतना और धृति। इस प्रकार विकारों के सहित यह क्षेत्र संक्षेप में कहा गया

है। ज्ञानियों के बारे में भगवान ने बीस लक्षण बताएं हैं।

13.7

अमानित्वमदम्भित्वम्, अहिंसा क्षान्तिरार्जवम्।
आचार्योपासनं(म्) शौचं(म्), स्थैर्यमात्मविनिग्रहः॥13.7॥

अपने में श्रेष्ठता का भाव न होना, दिखावटीपन न होना, अहिंसा, क्षमा, सरलता, गुरु की सेवा, बाहर-भीतर की शुद्धि, स्थिरता (और) मन का वश में होना।

विवेचनः- भगवान अर्जुन को बीस लक्षण बताते हैं और कहते हैं कि ज्ञान का अधिकारी वही बन सकता है जिसने **मान का मोह** छोड़ दिया।

हम में से कई लोगों को लगता होगा मुझे तो मान की विशेष अपेक्षा नहीं है। जिनको लगता है कि उन्होंने अँगूठी पहनी है, चेन पहनी है, घड़ी पहनी है, महंगा मोबाइल रखा है, बहुत बढ़िया साड़ी पहनी है, ब्रांडेड कपड़े पहने हैं, तो हमने यह सब मान के अलावा किस सुख के लिए किया है? हम सोच सकते हैं। गले में बीस या पचास ग्राम की सोने की चेन डालकर घूमते हैं तो उससे शरीर को कौन सा लाभ होता है। एक अंगूठी पहनते हैं, दो या तीन पहनते हैं तो क्या इनसे उंगलियों को कोई लाभ होता है? यह तो सिर्फ मान और अपमान की दशा के लिए ही पहनते हैं। मन में तो यही होता है कि अगर मैं यह सब चीजें करूँगा तो मुझे बहुत मान मिलेगा। हमारे जीवन की नब्बे प्रतिशत क्रियाएँ खाने के लिए नहीं हैं? वह सिर्फ मान के लिए ही हैं। जितना काम किया है उससे रोटी की व्यवस्था तो हो गई है। फिर उसके बाद जितना काम कर रहे हैं, वह सिर्फ मान के लिए ही कर रहे हैं। हमें लोग अच्छा मानें, हमारे बारे में सम्मान महसूस करें, यही दृष्टि हमारी आरंभ हो जाती है मान के लिए और पूरा जीवन उस मान को बढ़ाने के लिए हम क्या-क्या नहीं करते हैं।

लक्ष्मण जी ने राम जी से संवाद किया, उसे लक्ष्मण गीता कहा जाता है। लक्ष्मण जी ने एक प्रश्न किया कि भगवान मुझे भक्ति कैसे मिलेगी तो पहला सूत्र राम जी ने कहा :-

ग्यान मान जहँ एकउ नाहीं।।

लक्ष्मण, जब तक मान के लिए अभिलाषा है तब तक ज्ञान नहीं मिल सकता।

देख ब्रह्म समान सब माहीं।।

सबमें ही जो ब्रह्म को देखे। ज्ञान के द्वारा ईश्वर की सर्वव्यापकता का अनुभव हो जाता है तो मनुष्य सबमें भगवान को देखने लग जाता है।

और भगवान ने भरत जी को कहा-

सवहि मानप्रद आपु अमानी।।

भरत सबको तो मान देना पर खुद मान की अपेक्षा मत करना।

दैवी संपत्ति में भगवान सोलहवें अध्याय में कहते हैं :-

नातिमानिता :-यह भगवान ने छब्बीसवाँ गुण बताया है।
अपने में श्रेष्ठता का अभाव।

जब हम बड़े बड़े संतो के पद देखते हैं।
तुलसीदास जी अपने बारे में क्या कहते हैं।
सूर दास जी अपने बारे में क्या कहते हैं-

मो सम कौन कुटिल खल कामी,
जेहिं तन दियौ ताही बिसरायौ एसौ नोन हरामी।।

पदरत्नाकर भाइजी का सुंदर भजन है-

नाथ मैं थारो जी थारो। चोखो, बुरो, कुटिल अरु कामी, जो कुछ हूँ सो थारो।
नाथ मैं थारो जी थारो, नाथ मैं थारो जी थारो।।

हम तो यह सभी हैं, पर हम यह मानते ही नहीं हैं ।

भर भर भर विषय उधर को दाहू, जैसे शूकर ग्रामी।।

मान को **काक विष्ठा** कहा गया है। काक विष्ठा यानि कौवे की विष्ठा। कौवे की विष्ठा की बहुत विशेषता है। भगवान ने सभी प्राणियों को अलग-अलग विशेषता दी है। कौआ पक्षियों में एकदम निंदनीय पक्षी है परंतु उसकी भी एक विशेषता है। कौवे की जो बीट होती है उसमें एक अलग प्रकार की चमक होती है। अंधेरा हो और कौवे की बीट पड़ी हो तो कई बार ऐसा भ्रम हो जाता है कि मोती के जैसा कुछ चमक रहा है तो लोग गलती से उस पर हाथ लगा देते हैं और उनके हाथ पर विष्ठा लग जाती हैं। कौवे की विष्ठा दिखने में खराब नहीं दिखती है, वह चमकती है। मान को हमारे ऋषियों ने काक विष्ठा कहा है क्योंकि यह चमकता है, लेकिन इसको जितना भी प्राप्त करने की कोशिश करते हैं हाथ में विष्ठा ही ती है।

एक बार एक गुरुजी थे। बाद में वह बहुत प्रसिद्ध हो गए। रुपए का स्पर्श नहीं करते थे, किसी से पैर नहीं छुआते थे। किसी से अपनी प्रशंसा नहीं सुनते थे। इस कारण बहुत से लोग उनको मानते थे। उनके बहुत से शिष्य हो गए थे। हर शिष्य कहता था कि गुरुजी को प्रशंसा अच्छी नहीं लगती। उनकी प्रशंसा मत करना। गुरु जी के पैर भी मत छूना। जब भक्त लोग गुरुजी के पास आते थे तो कोई भी उनको प्रणाम नहीं करता था, उनकी प्रशंसा नहीं करता था। इस कारण उनकी और भी प्रतिष्ठा हो गई। लोग बहुत मानने लगे उनको। गुरु जी पहले तो खुद कहते थे कि मुझे प्रणाम भी मत करो, प्रशंसा भी मत करो। शिष्यों ने कहा कि आप मत बोलो हम ही कह देंगे। अब शिष्य ही सब भक्तों को कहते कि गुरु जी को प्रणाम नहीं करना, उनकी प्रशंसा नहीं करना। एक दिन एक घटना घटी। एक भक्त आया, आकर गुरु जी से बात करके चला गया। गुरुजी ने शिष्य से पूछा, आज तुमने इससे क्यों नहीं कहा कि गुरु जी को प्रणाम नहीं करना, गुरुजी की प्रशंसा नहीं करना। शिष्य ने कहा कि गुरु जी वह तो पुराना था, उसे पता ही था। गुरुजी ने कहा तुम कह दिया करो। अब गुरुजी में यही मोह आ गया कि मेरा मान हो कि मैं प्रशंसा नही करवाता, प्रणाम भी नही करवाता । यह इतना सूक्ष्म होता है कि प्रशंसा नहीं भी करवाने की प्रशंसा चाहिए। प्रणाम नही करवाने का मान भी चाहिए।

एक बार दो साधु जा रहे थे। चलते-चलते एक ने दूसरे को कहा- रुको वह सामने तीन मंजिल का भवन देख रहे हो? मैंने उसे बीस वर्ष पहले लात मार दी थी। मैं कभी इस पर गया नहीं। थोड़ा आगे चलने पर उसने दूसरे से कहा कि तुमने कुछ कहा नहीं ? दूसरा बोला कि मैंने देखा कि लात अभी ठीक से लगी नहीं है। अभी वही फँसी हुई है। यदि तुम ने लात मारी थी तो उस भवन को देख कर तुम्हें याद क्यों आया कि तुम ने उसे लात मारी थी। हमारी सारी क्रियाएं **मान** के लिए हैं।

कर्जा ले लेकर लोग शादी करते हैं। कर्जा लेकर गाड़ी खरीदते हैं। किसलिए ? केवल मान के लिए।

कबीरा गर्व न कीजिए,काल गहे कर केस ना जाने कहाँ मारिसी, कै घर कै परदेस।
कबीरा गर्व न कीजिये , ऊँचा देख आवास। काल पड़ो भू लेटना , ऊपर जमसी घास।।

कितना भी बड़ा भवन बना लो। बाद में जमीन में गाड़ दिए जाओगे और ऊपर से घास जम जाएगी ।

एक सूफी ने अपने गुरु जी से पूछा कि अगर ऊपर जाऊँ तो ऊपर वाले के लिए क्या भेंट लेकर जाऊँ। तो गुरु जी बोले दो ही चीज है- पहली है **दीनता**। बड़े मत बन कर जाना, दीन होकर जाना, झुक कर जाना।

दूसरी **अजीजी**। भगवान प्रेम के भूखे हैं और प्रेम माँगते हैं। प्रेम करो, यही भक्ति और ज्ञान के लिए पहला सूत्र है। हम लोग अपने बारे में इतना मान करते हैं, इसलिए ज्ञान और भक्ति के अधिकारी नहीं बन पाते।

दंभ :- हममें से ज्यादातर लोग सब जैसे हैं, उससे भी अच्छा दिखाते हैं अपने आपको। हममें से कोई भी ऐसा नहीं होगा कि जो जैसा है वैसा अपने आप को दिखाए। कई बार तो अपने आप को बिल्कुल विपरीत ही दिखाते हैं। वैसे तो हम कभी पूजा नहीं करते हैं, पर जब मेहमान आ जाए तो तीस मिनट के लिए पाठ करने बैठ जाएँगे और घंटी भी जोर से बजाएँगे। यह तो एक दिखावा ही है। दंभी की मुश्किल यह होती है कि उसके जीवन में दंभ जितना बढ़ता जाएगा, वह सत्य से उतना ही दूर हो जाता है। वह अपने बारे में प्रदर्शन करते-करते अपने ही झूठ को सच मान लेता है। मुख्य बात यह होती है कि हमारे दंभ को सब पहचानते हैं और हमें लगता है कि कोई नहीं पहचानता है। मैं जैसा दंभ कर रहा हूँ लोग मुझे वैसा ही मानते हैं इसलिए अगर मुझे वैसा सम्मान नहीं देते तो मुझे और गुस्सा आता है। जब सामने वाला उतना आदर ही नहीं करता कि जितना हम सोच रहे हों कि इतना आदर होना चाहिए तो मन में बड़ा क्षोभ होता है। दंभ करने वाला हमेशा अपेक्षा करता है कि उसे अच्छा ही माना जाए और न हो तो बहुत दुःख पाता है।

भगवान भी तो यही कहते हैं-

मोहि कपट छल छिद्र न भावा।

जैसे हो वैसे ही दिखो, इसलिए जीवन में हम जैसे हैं वैसे ही दिखने का प्रयास करें।
ः
अहिंसा :- अहिंसा का अर्थ है कि मुझसे किसी को दुःख नही हो। " मनसा वाचा कर्मणा," तीनों प्रकार से मैं किसी को दुःखी ना करूँ। अपने परिवार के लिए, अपने समाज के लिए, प्राणी मात्र के लिए, प्रकृति मात्र के लिए, एक पेड़ के तिनके को भी मेरे द्वारा दुःख नहीं होना चाहिए, यही अहिंसा है। मेरे द्वारा किसी को भी कष्ट नहीं होना चाहिए।

क्षमा :- जिसके अंदर क्षमा भाव हो जाता है उसे दूसरे के अंदर दोष नहीं दिखते हैं। माँ को बेटे से बहुत लगाव होता है। पुत्र से यदि कोई गलती हो जाए तो माँ कहती है, वह तो ऐसा नहीं है। आज जरा जल्दी में होगा इसलिए भूल गया होगा, उसके दोष छुपा लेती है। माँ कहती है वह कभी ऐसा नहीं करता है, बस आज हो गया। उसके दोष को छोटा कर देती है। यह जो माँ का अपने पुत्र के प्रति स्वभाव होता है, यह सभी माँओं का अपने पुत्र के प्रति होता है। जितना हम दूसरों के दोषों को छोटा करके देखते हैं और इग्नोर करते हैं, इससे बड़ा हमारा लाभ क्या होगा। जितना हम दूसरों के दोषों का चिंतन करते हैं, उतना ही हम उसके दोषों से बँध जाते हैं। दोष तो उसमें हैं परन्तु बँध मैं गया। जो भी आता है हम उसी के दोषों की चर्चा करते हैं। इससे अपना तो कोई लाभ नहीं है। सामने वाले के अपराध को बहाना करके छोटा कर दो और भूल जाओ।

आर्जवम्:- एकदम सरल। मानस में जब भगवान ने शबरी को उपदेश दिया तो नौवीं भक्ति कही आर्जवम् की। जो एकदम सरल है जिसके अंदर कोई छल नहीं है।
अष्टावक्र जी ने जनक जी को उपदेश दिया। उन्होंने साधक का सर्वश्रेष्ठ गुण आर्जवम् बताया। उन्होंने कहा कि यह सबसे कठिन है। सरल नहीं है। जो जैसा है वैसे ही रहे, देखो कितना मुश्किल है। हम जैसे हैं वैसे ही रहें, यह सुनने में तो आसान लगता है, परंतु करने में मुश्किल है।

आचार्योपासनं शौचं।

दो स्थानों पर भगवान ने गीता में गुरु की महिमा की। चौथे अध्याय के चौबीसवें श्लोक में और तेरहवें अध्याय के सातवें श्लोक

में भगवान गुरु की, आचार्य की उपासना करने को कहते हैं। कोई कितना भी बड़ा ज्ञानी हो जाए। अपने गुरु की अवहेलना करने पर उसको ज्ञान नहीं हो सकता है।

गुरु बिन होइ कि ज्ञान।

गुरु के बिना ज्ञान कैसे हो सकता है। इसलिए उत्तम आचार्यों का, उत्तम ऋषियों का, उत्तम साधुओं का आदर और उपासना करनी चाहिए। भगवान कहते हैं उनकी उपासना करनी चाहिए। उनकी सेवा करो। उनको प्रसन्न करो।

सिकंदर का नाम हमने सुना है। सुकरात का नाम भी सुना है। उनका मूल नाम सोक्रेटिस है। अरस्तु का भी नाम सुना है, उनका नाम अरिष्टोक्रेट है। प्लेटो का नाम भी सुना है। गुरु शिष्य परंपरा में ऐसे तीन श्रेष्ठ शिष्य बहुत कम हैं। भारतीय दर्शन में भी, विश्व दर्शन में भी ऐसे तीन श्रेष्ठ शिष्य बहुत कम हैं। सुकरात के शिष्य अरस्तु और अरस्तु के शिष्य प्लेटो। तीनों बहुत बड़े विचारक, चिंतक और इतने बड़े दार्शनिक हुए, जो अद्भुत हैं। विश्व इतिहास में गुरु शिष्य परंपरा में तीन उत्तम पीढ़ियाँ बहुत दुर्लभ है।

अरस्तु सिकंदर के गुरु हैं। वह उनके पास रोज ज्ञान के लिए जाया करते थे। लेकिन अरस्तु की शर्त थी कि मेरे पास ज्ञान सुनने आओगे, तो अपना काम लेकर नहीं आना है, अकेले आना है, अपने सभी काम को छोड़ कर आना है और एकांत में मेरे साथ रह सकते हो तो आना। ऐसे ही एक दिन अरस्तु पहाड़ पर सिकंदर को लेकर गए और ज्ञान सुनाया। तभी एकदम तेज बारिश हुई और अचानक उस स्थान पर पहाड़ी नदी बहने लगी तो अरस्तु ने सिकंदर से कहा, तुम मेरे पीछे आओ मेरा हाथ पकड़ कर चलो। सिकंदर ने कहा, नहीं, मैं आगे चलूँगा। आप मेरा हाथ पकड़ कर चलिए। अरस्तु को अच्छा नहीं लगा। कि गुरु की आज्ञा की अवहेलना कर दी, परंतु अरस्तु ने तर्क नहीं किया। आगे सिकंदर चलने लगे और अरस्तु का हाथ पकड़कर जब पार पहुंचे तो अरस्तु ने कहा कि तुमने मेरी अवहेलना की मुझे अच्छा नहीं लगा, परंतु तुमने यह आग्रह क्यों किया। तो सिकंदर ने प्रणाम करके कहा कि क्षमा करें आपकी अवज्ञा करने का मेरा कोई इरादा नहीं था, पर आगे खतरा था और एक कदम भी गलत पड़ने पर हम बह जाते। यदि मैं आपको आगे करता और आपको कुछ हो जाता तो मुझे अच्छा नहीं लगता। गुरु ने कहा कि क्या हो गया, सबको तो एक दिन जाना ही है। सिकंदर ने कहा कि मैं चला गया तो कोई बात नहीं परंतु आप रहोगे तो सौ सिकंदरो का निर्माण कर लोगे, परंतु कहीं आपको कुछ हो जाता तो सौ सिकंदर मिलकर भी एक अरस्तु का निर्माण नहीं कर सकता था। अरस्तु ने आशीर्वाद दिया कि गुरु की महिमा को कभी कम न करें।

शौच :- स्वच्छता और पवित्रता को मिला दीजिए, यह हो गया शौच। हमारे जितने भी गुण हैं शौच उनकी पॉलिश है। पॉलिश करने से वस्तु चमकती है। जीवन में अगर शौच नहीं होगा तो हमारे अंदर गुण होंगे भी तो चमकेंगे नहीं। शौच से हमारा साधन, व्यवहार चमकता है। अप्रिय वचन मुख से नहीं निकलते हैं। यह वाणी का शौच है। मेरे द्वारा एक भी न किए जाने वाला कर्म न हो और एक भी न किए जाने वाली बात न हो जाए।

स्थैर्य :- अविचलितता। विपरीत परिस्थिति में जो विचलित नहीं होता है।

आत्मनिग्रह :- मन और इंद्रियों का निग्रह। जब तक हम दूसरों के दिए हुए अनुशासन में रहते हैं तब तक यह नहीं आता है। स्व अनुशासन होना चाहिए।

सीता जी ने मारीच प्रसंग में लक्ष्मण जी को कहा कि तुम जाओ। लक्ष्मण जी ने बहुत समझाया कि श्रीराम जी ने दस हजार राक्षसों को मार दिया। यह तो एक अकेला है, तो वह मार देंगे। माताजी ने कहा - नहीं, तुम जाओ। लक्ष्मण जी ने कहा ठीक है। उन्होंने एक रेखा खींच दी। इस से बाहर मत आना। परंतु सीता जी ने लक्ष्मण की बात नहीं मानी और रावण उनको हर कर ले गया। जब हनुमान जी सीता जी का पता लगाकर आए तो भगवान ने पूछा - जानकी जी कैसी हैं, कैसे रहती हैं। तो हनुमान जी बोले उन्होंने जो गलती की थी वह अब समझ गई हैं। अब उन्होंने जो अपना अनुशासन बनाया है वह कभी नहीं तोड़ती हैं।

नाम पाहरु दिवस निसि, ध्यान तुम्हार कपाट।
लोचन निज पद जंत्रित जाहिं प्रान केहिं बाट।।

जब रावण सामने आता है तो,रावण कहता है -

एक बार विलोकी मम ओरा।

परंतु सीताजी तो तिनके की आड़ लेकर घूंघट से रावण से बात करती हैं।
जीवन में हमेशा अनुशासित रहो।

इस प्रकार गुरु की महिमा का वर्णन करते हुए आज के सरल सुंदर सत्र का समापन हुआ।

हरि शरणं हरि शरणं हरि शरणं हरि शरणं,
हरि शरणं हरि शरणं हरि शरणं हरि शरणं।

योगेश्वर श्रीकृष्ण चंद्र की जय।।

प्रश्नोत्तरी :-

प्रश्नकर्ता :- माया दीदी।

प्रश्न :- अव्यक्त मतलब ब्रह्म, परमात्मा है तो कृष्ण के बारे में हम सोच रहे हैं कि वह भी ब्रह्म ही है ना ? या हम उनको वर्णित नहीं कर पा रहे हैं?

उत्तर :- भगवान अव्यक्त का व्यक्त स्वरूप है। जब परमात्मा अव्यक्त स्वरूप में है तो वह अलग है। जब वह व्यक्त स्वरूप में है तो वह दिख सकते हैं। भगवान कर्तुम, अकर्तुम, अन्यथा कर्तुम। वह करने का काम भी कर सकते हैं। नहीं करने का काम भी कर सकते हैं, और करने न करने (अन्यथा) दोनों काम कर सकते हैं। अव्यक्त तो सर्वशक्तिमान हैं, उनमें यह भी शक्ति है कि वह व्यक्त हो जाए।

प्रश्नकर्ता :- मंजू दीदी।

प्रश्न :- जब हम ध्यान करते हैं तो अर्जुन को तो विश्वरूप दर्शन हुए थे, परंतु हमें तो वही पीले कपड़े पहने हुए भगवान के दर्शन हुए?

उत्तर :- भगवान हमें उस समय कैसे दिखे इस से कोई बात नहीं है। भगवान तो अपने विश्व रूप में ही प्रकट होते हैं। अर्जुन ने जिस मोड में फोकस किया था उसमे जूम किया। अर्जुन तो युद्ध में था, इसलिए उसे उस रूप के दर्शन हुए और आपकी जो प्रवृत्ति थी तो आपको पीतांबर रूप में दर्शन दिए। जो अर्जुन ने दर्शन किए, वह हमें नहीं करने हैं। हमें तो जो दर्शन चाहिए, हमें तो वही बस करने हैं।

प्रश्नकर्ता :- वेंकट भैया।

प्रश्न :- शरीर एक होता है, शरीर के अंदर मस्तिष्क एक है और आत्मा एक है । कभी हम सुनते हैं कि वह मस्तिष्क से सोचता है। मन, आत्मा से नहीं सोचता इससे क्या फर्क पड़ता है?

उत्तर :- आत्मा तो अक्रिय है। वह तो कुछ नहीं करती है। जैसे बल्ब में करंट है, पर बल्ब थोड़ी जल रहा है, हाइड्रोजन गैस है वह जल रही है। जब शरीर सो सकता है, कार्य कर सकता है तो वह चेतनता से होता है। आत्मा कुछ नहीं करती है। आत्मा निर्लेप है।

इस सत्र के समापन के साथ ही सब ने मिलकर हनुमान चालीसा का पाठ किया।

।। जय श्री राम ।।।

हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

https://vivechan.learngeeta.com/feedback/

विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!
हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचे। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

जय श्री कृष्ण !
संकलन: गीता परिवार - रचनात्मक लेखन विभाग

हर घर गीता, हर कर गीता!
आइये हम सब गीता परिवार के इस ध्येय से जुड़ जायें, और अपने इष्ट-मित्र -परिचितों को गीता कक्षा का उपहार दें।

https://gift.learngeeta.com/

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करे।

https://vivechan.learngeeta.com/

|| गीता पढ़े, पढ़ायें, जीवन में लाये ||
||ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ||